ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
ISSN No.: 2347-2944, RNI:UPBIL04292, REG. No.: 561/2013-2014 Vol.-2, No.-2, **PP-134-138**,YEAR-2015

महिला उत्पीड़न : एक समस्या एवं समाधान

❑ **चन्द्रशेखर**

सारांश– *पुरुष प्रधान पितृ–सत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था में महिला उत्पीड़न एवं अत्याचार कोई नवीन घटना नहीं है । विश्व के लगभग सभी देशों में महिलाओं की दोयम सामाजिक स्थिति के कारण वे उत्पीड़ित होती रही हैं । भारतीय परिवेश में भी सभी ऐतिहासिक काल ऐसी उत्पीड़ित घटनाओं के साक्षी रहे हैं । सीता की अग्नि–परीक्षा, अहिल्या को पति का शाप, द्रौपदी का चीर–हरण इसके साक्षात् उदाहरण हैं और आज भी सामाजिक सम्मान और परम्परा पालन के आदर्श के साथ इन घटनाओं को बड़े ही गर्व के साथ दोहराया जा रहा है ।1 घर के बाहर हो या घर के भीतर, महिला उत्पीड़न एक सामान्य घटना होती है । यही नहीं पुत्री के जन्म से पूर्व ही इसका घृणास्पद सिलसिला प्रारम्भ हो जाता है । जहाँ परिवार में पुत्र जन्म प्रसन्नता और प्रतिष्ठा का विषय होता है वहीं पुत्री जन्म पारिवारिक इज्जत पर बट्टा लगाने वाला होता है । इसी कारण से जन्म लेने से पूर्व ही कन्या को मारने का कुचक्र प्रारम्भ हो जाता है ।*

बालिका भ्रूण हत्या घरेलू हिंसा का सबसे गम्भीरतम् स्वरूप है । देश के अधिकांश राज्यों के असंतुलित लिंगानुपात के सांख्यिकीय तथ्य हमारे मन–मस्तिष्क को झकझोरते हैं । पुत्र प्राप्ति से धार्मिक, सामाजिक प्रतिष्ठा, पुत्री विवाह के लिए दहेज की बढ़ती सूची तथा लड़कियों की बढ़ती असुरक्षा इत्यादि कई ऐसे कारण हैं जो कन्या–भ्रूण हत्या जैसे घिनौने काम को बढ़ावा दे रहे हैं और दुर्भाग्य की बात यह है कि इसमें समाज के सभी वर्ग के लोग सम्मिलित हैं । ऊपर से सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि महिलायें स्वयं भी इस आपराधिक कृत्य में सम्मिलित होती हैं । पंजाब और हरियाणा जैसे आर्थिक और शैक्षणिक दृष्टि से समृद्धिशाली राज्यों में तो यह समस्या और अधिक चिन्तनीय है ।[2] कन्या को दैवीय रूप में पूजने वाले इस देश में पिछले दशकों के दौरान जन्म से पूर्व लिंग परीक्षण की सुविधाओं के विस्तार के बाद एक करोड़ लड़कियाँ जन्म ही नहीं ले पाईं । संयुक्त राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय बाल–कोष 'यूनीसेफ' द्वारा ''विश्व में बच्चों की दशा 2006'' नामक एक वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार लिंग परीक्षण जो शायद बड़ी वैज्ञानिक उपलब्धि हो सकता था, भारतीय परिस्थितियों में आज एक अभिशाप बन गया है क्योंकि इसके कारण करोड़ों बालिकायें जिंदगी की रोशनी से दूर कर दी जाती हैं ।[3]

यद्यपि वर्तमान में इस पर अंकुश लगाने के लिए पी.एन.डी.टी. एक्ट के अन्तर्गत कड़ी सजाओं और भारी–भरकम जुर्माने का प्रावधान किया गया है साथ ही इसकी सूचना देने वाले के लिए भी पुरस्कार की व्यवस्था की गई है[4], लेकिन परिणाम सबके सामने है ।

मुरैना और भिण्ड, चम्बल क्षेत्र के ग्रामीण अंचलों में जहाँ कि यह सुविधा उपलब्ध नहीं हो पाती है वहाँ बालिका शिशु को जन्म लेते ही मारने की व्यवस्था कर दी जाती है । मुरैना और भिण्ड, चम्बल क्षेत्रों के गाँवों में स्वयं मातायें अपनी दो दिन की अबोध कन्याओं के मुँह में तम्बाकू भरकर यह कहती हैं कि ''लाली जा लाला को ले आ'' तब तक पालने में झुलाती है जब तक वह मर नहीं जाती । इस अंचल के अधिकांश जिलों में बालिका शिशु दर प्रति हजार लड़कों की तुलना में 800 तक पहुँच रहा है । मुरैना जिले में तो यह आंकड़ा 400 से भी कम है । यहाँ के हिसाब से न तो खेती की सुरक्षा करने और न ही बन्दूक चला पाने के कारण लड़कियाँ गैर जरूरी हैं तो फिर क्यों उनको पैदा कर पालन–पोषण कर दहेज तथा

शोधार्थी–समाजशास्त्र, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर, (म0प्र0) भारत

अन्य अपमानों की पीड़ा को सहन किया जाय। इसलिये बेटी को या तो सीधे ही अथवा उपेक्षा से मार दिया जाता है ।[5]

जन्म से पूर्व हत्या की त्रासदी से लेकर जैसे–तैसे जन्म मिल जाने पर जीवन जीने के अधिकारों की प्राप्ति महिलाओं के लिए यक्ष प्रश्न ही है। संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष की रिपोर्ट के अनुसार भारत में 15–49 वर्ष की 70 प्रतिशत महिलायें घरेलू हिंसा का शिकार हैं तथा पति और रिश्तेदारों द्वारा महिलाओं के प्रति उत्पीड़न के मामलों में साल दर साल वृद्धि ही हो रही है ।[6] दुर्भाग्य की बात तो यह है कि गरीब और अशिक्षित महिलायें ही नहीं अपितु पढ़ी–लिखी और सम्पन्न महिलायें भी इस उत्पीड़न की यंत्रणा को भोगती हैं । पत्नी को पीटने की 40 फीसदी शिकायतें सभ्रान्त परिवारों से आती हैं । बिहार, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान और आन्ध्रप्रदेश जैसे राज्य भी इन घटनाओं में सम्मिलित हैं। नेशनल फेमिली हेल्थ सर्वे–3 के आंकड़ों के मुताबिक पति के हाथों पीड़ित होने में मध्यप्रदेश की महिलायें बिहार के बाद दूसरे क्रम पर हैं। यहाँ 44 फीसदी महिलायें ऐसी हैं जो कभी न कभी पति के हाथों प्रताड़ित हुई हैं ।[7]

महिला उत्पीड़न की यह सांख्यिकीय स्थिति तो तब है जबकि ऐसे ज्यादातर मामले थानों में रिपोर्ट दर्ज कराने योग्य न समझे जाने से दर्ज हीं नहीं होते हैं ।8 केवल भारत ही नहीं अपितु विश्व के कई देशों में महिला उत्पीड़न की समस्या व्याप्त है । ब्रिटेन में 25 प्रतिशत, श्रीलंका में 60 प्रतिशत, पाकिस्तान में 80 प्रतिशत, बांग्लादेश में 47 प्रतिशत महिलायें उत्पीड़न से पीड़ित हैं ।[9]

विश्व स्वास्थ्य संगठन के एक अध्ययन में यह जानकारी मिली है कि सच्चाई यही है कि दुनिया की हर छठी महिला घरेलू हिंसा का शिकार है । यह ''वैश्विक हकीकत'' सभी सामाजिक–आर्थिक बंधनों से परे है । इसमें भी सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रताड़ित होने के बावजूद भी प्रत्येक छह में से पाँच महिलायें परिवार से बाहर के किसी भी व्यक्ति से इसकी चर्चा करना भी उचित नहीं समझती हैं । समाज द्वारा महिला उत्पीड़न की इस सामान्य सच्चाई को परिवार के बच्चे भी सीख कर पारिवारिक परम्परा के रूप में निवर्हन करते हैं। रिपोर्ट के अनुसार जापान हो या पेरू, थाईलैण्ड से लेकर नामीबिया तक हर देश में महिला उत्पीड़न का यह चक्र महिलाओं के शारीरिक, मानसिक और सामाजिक स्वास्थ्य को बुरी तरह से प्रभावित करता है। पति और अन्य सम्बन्धियों से मिलने वाले इस दर्दनाक प्यार को सहन करना आर्थिक रूप से निर्भर तथा सामाजिक लोक–लाज के डर से महिलाओं की नियति है ।[10] पापुआ न्यू–गिनी के प्रधानमंत्री को तो पतियों से मार्मिक अपील करनी पड़ी है कि अपनी पत्नियों को पीड़ित मत करो । यहाँ के ग्रामीण इलाकों में सुअरों को महिलाओं से अधिक कीमती समझा जाता है ।[11] खाना वक्त पर न बनाना या ठीक से न बनाना, पति से बहस करना, बच्चों का ख्याल न रखना, शारीरिक सम्बन्धों से इन्कार, घर का बेतरतीब होना, बिना बताये घर से बाहर निकलना, पराये पुरुष से बात करना, ऊँची आवाज में बोलना इत्यादि सामान्य और बचकानी सी बातें इस उत्पीड़न का कारण बन जाती हैं जो कि ताने देने, अपमानित करने, लांछन लगाने से प्रारम्भ होकर मार–पीट, हत्या और अन्य शारीरिक–मानसिक क्रूरता की हद तक बढ़ जाती है ।

घरेलू हिंसा से पीड़ित महिलाओं के लिए सामाजिक एवं प्रशासनिक मशीनरी में कोई संवेदनशीलता नहीं दिखाई देती है जो कि इसके मानवीय पक्ष को देखें और जिसे स्त्रियों के अपमान और उत्पीड़न में अपना अपमान और पीड़ा दिखे । हमारा समाज ऐसे अपराधियों का स्वाभाविक सहयोगी ही होता है । क्यों कि इस चक्रव्यूह के निर्माण में वह भी शामिल है ।

वास्तविकता तो यही है कि लड़कियाँ और महिलाओं का कोई मोल नहीं है उन्हें तो कहीं भी मारा जा सकता है, किसी भी स्तर तक मारा जा सकता है, और कोई भी मार सकता है ।[12] जन्म से पहले, जन्म के बाद, शारीरिक प्रताड़ना से या मानसिक यंत्रणा से या फिर सामाजिक लांछनों से वह या तो मार डाली जाती है या आत्महत्या करने के लिए मजबूर कर दी जाती है। असुरक्षा, कलह, रंजिश और पारिवारिक प्रतिष्ठा का आवरण चढ़ा किसी भी उम्र की महिला के

विरुद्ध हिंसा जायज करार दे दी जाती है । अत्याचार सहना ही उसका भाग्य है और उस पर विडम्बना यह है कि अधिकारों का यह निकृष्तम हनन किसी दिलो–दिमाग को झकझोरता नहीं है । स्वयं महिलायें भी अपनी इस नियति को स्वीकार करने की मानसिकता में दिखाई देती हैं ।

यूरोपीय परिषद् के हवाले से ''स्टॉप वायलेंस अंगेन्स्ट वूमेन'' शीर्षक से रिपोर्ट में कहा गया है कि ''16 से 44 साल के बीच महिलाओं की मौत और विकलांगता का प्रमुख कारण महिला उत्पीड़न है।'' कैंसर और सड़क दुर्घटनाओं से भी ज्यादा महिला उत्पीड़न के कारण महिलाओं की मौतें होती हैं। अमेरिका में उत्पीड़न के शिकार लोगों में 85 प्रतिशत महिलायें ही होती हैं । रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि रूस सरकार के अनुमान के अनुसार कुछ पहले 14 हजार महिलायें पति या रिश्तेदारों द्वारा प्रताड़ित गईं। 70 प्रतिशत महिलाओं की हत्या पतियों द्वारा ही होती हैं।[13]

''मारते हैं तो क्या हुआ, आखिर हैं तो अपने ही घरवाले'' की भावना से महिलायें अपने विरुद्ध हिंसा के प्रति सहनशील बनी रहती हैं । परिवार की इज्जत के कारण महिलायें स्वयं अपने विरुद्ध हो रहे अत्याचारों के खिलाफ आवाज उठाने से डरती हैं या फिर उन्हें डरा दिया जाता है ताकि प्रताड़ना का चक्र अनवरत जारी रहे । माँ बेटी के लिए, सास बहू के लिए और बहू सास के लिए तथा देवरानी जेठानी के लिए उत्पीड़न में परोक्ष और अपरोक्ष सहयोगी बनकर दोषी होती हैं । राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के एक सर्वेक्षण में यह पाया गया है कि महिलाओं के साथ पारिवारिक दुर्व्यवहार के 49 प्रतिशत मामलों में महिलायें भी लिप्त रही हैं ।[14]

हर्ष की बात यह है कि महिला सशक्तीकरण, विकास कल्याण और सुरक्षा वर्तमान में सामाजिक दृष्टि से सर्वाधिक प्राथमिक चिन्तन वाले विषय बने हुए हैं। इसलिए 70 से महिला कल्याण का दशक, 80 के महिला विकास का दशक तथा 90 का महिला सशक्तीकरण के दशक से महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए प्रयासों की लम्बी श्रृंखला परिलक्षित होती है। इसके साथ–साथ स्वतंत्रता के पूर्व एवं पश्चात् महिलाओं से सम्बन्धित कानूनों के माध्यम से शासकीय तौर पर महिला अधिकारों को सुरक्षित और संरक्षित किया गया है । घरेलू हिंसा अधिनियम 2005, नियम 2006 को प्रभावी बनाकर इस दिशा में एक सकारात्मक कदम बढ़ाया गया है । इस कानून के अनुसार परिवार में किसी भी महिला के साथ उसके पति अथवा अन्य परिजनों द्वारा किया जाने वाले ऐसे कार्य घरेलू हिंसा माने जायेंगे जिससे महिला का घर में रहना मुश्किल हो अथवा उसे शारीरिक या मानसिक पीड़ा पहुँचती हो। आदतन हमला, अनैतिक आचरण सहित सभी प्रकार की क्रूरता इसमें सम्मिलित हैं । महिला को परेशान करने वाली मौखिक धमकी, ताने कसना, यौन शोषण इत्यादि सभी घरेलू हिंसा या महिला उत्पीड़न माना गया है। कानून के अन्तर्गत दोषी व्यक्ति को बड़ी सजायें और जुर्माने का प्रावधान भी किया गया है।

''सब कुछ बदल जायेगा, सोचना बेकार है, सब बदलने की शुरुआत अब करनी चाहिये''। गौहर रजा की ये पंक्तियाँ घरेलू हिंसा से पीड़ित महिलाओं के लिए इस अधिनियम के प्रभावी होने से प्रेरक बन सकेंगी ।15 ऐसी आशा जताई जा रही है कि अधिनियम महिला हिंसा के कारणों की सुनवाई कर महिलाओं को सुरक्षा प्रदान करेगा । लेकिन क्या वास्तव में महिलायें अपनी चुप्पी तोड़कर, हिम्मत जुटाकर अपनों के विरुद्ध आवाज उठा पायेंगी, यह एक ऐसा भारी प्रश्न है, जिसका कोई उत्तर नहीं है ।

भारत जैसे समाज में जहाँ महिलाओं को ऐसे आदर्श, परम्पराओं और संस्कारों की घुट्टी जन्म से ही पिलाई जाती है कि पिता–भाई, पति और पुत्र ही तुम्हारे सब कुछ हैं । वहाँ यह कानून सीधे उन्हीं के खिलाफ उन्हें खड़ा करता है । उस बाबा आदम की व्यवस्था से सीधी लड़ाई है। अपनों की शिकायत करना, रिपोर्ट दर्ज कराना और केस लड़ना इतना आसान भी नहीं है। भावनात्मक कमजोरी के कारण यहाँ महिलायें स्वयं इस हिंसा को अपनी तकदीर मानकर आदर्श रूप में स्वीकृति दे देती हैं । यहाँ जब घर के छोटे–छोटे निर्णयों में में पुरुषों की मर्जी को सर्वोपरि माना जाता है, वहाँ इस कानून का सहारा लेकर पहले से ही निरीह

और कमजोर बनाई गई औरत अपनी आवाज कैसे बुलन्द कर सकती है ? यह सोचने की बात है क्योंकि वह यह भी जानती है कि घरवालों के विरुद्ध बाहर निकलकर आवाज उठाने का परिणाम उसे बदनामी के गहरे कुँये में डाल सकता है । जिस समाज में पति–पत्नी के मामलों को नितान्त निजी मामला बताकर हस्तक्षेप को उचित नहीं माना जाता हो वहाँ कानून के अन्तर्गत संरक्षण अधिकारी को सूचना देना, मददगार को सुरक्षा अधिकारी मानकर संरक्षण देने आदि सवाल अनुत्तरित ही हैं ।[16]

कानून बनाना एक बात है और उससे लाभ लेना दूसरी बात है । जैसा कि विदित है कि वर्तमान में महिलाओं के अधिकार सम्पन्न बनाने एवं उनकी स्थिति सुदृढ़ करने के लिए घरेलू हिंसा अधिनियम के अतिरिक्त भी दो दर्जन से भी अधिक विशिष्ट कानून हैं। साथ ही अनेकों संवैधानिक प्रावधानों के अन्तर्गत भी सुविधायें प्रदान की गई हैं । इन कानूनों की व्यवस्था से ऐसा लगता है कि महिलायें सम्पूर्ण अधिकार सम्पन्न हो गई हैं तथा वे किसी भी तरह से भेदभाव और शोषण का शिकार नहीं बनाई जा सकती हैं, सभी अधिकारों और अवसरों को प्राप्त कर वे दिन दूनी और रात चौगुनी तरक्की कर रही हैं । लेकिन क्या यही वास्तविक तस्वीर है ? कानूनों से कितनी महिलाओं को कितना लाभ मिला यह भी विचारणीय प्रश्न है । इसके साथ यह भी उल्लेखनीय है कि उत्सवधर्मी देश भारत में महिलाओं से सम्बन्धित सभी कार्यक्रम एवं योजनायें केवल दिवस के त्योहार के रूप में मनाकर प्रसन्नता व्यक्त कर ली जाती है और इसके केवल संगोष्ठियों, कार्यशालाओं तथा कार्यक्रमों के मंच पर से सुहावने भाषणों और लुभावनी घोषणाओं तक ही सीमित कर दिया जाता है। यही कारण है कि सार्वजनिक, पारिवारिक और व्यक्तिगत जीवन में महिलाओं के प्रति प्रचलित दृष्टिकोणों में अपेक्षित बदलाव नहीं आया है । महिलायें आज भी शोषण और उत्पीड़न का शिकार हैं । इस कानून की लम्बी और जटिल प्रक्रिया इसके क्रियान्वयन को मुश्किल बना सकता है । आशंका यह भी है कि महिलाओं को न्याय मिले या न मिले, परिवार तोड़ने का हथियार यह कानून नहीं बनेगा इसकी क्या गारंटी होगी ? कहीं महिलायें इसका दुरुपयोग कर पुरुषों के खिलाफ लड़ाई का एक हथियार न बनाये यह भी सोचना जरूरी है। पूर्व के दहेज निरोधक कानून की आड़ में कई निरपराधी पुरुष महिला अत्याचार के भी शिकार बने हैं। सच तो यह है कि सम्पत्ति अधिकार, तलाक उत्तराधिकार, दहेज निरोधक कोई भी कानून हो, महिलाओं को इन कानूनों से जो भी लाभ मिला है उससे कहीं अधिक उन्होंने खोया है। पारिवारिक रिश्ते दांव पर लगाकर बदनामी और अपमान का ठीकरा सिर पर लेकर अन्य महिलाओं द्वारा ही उपेक्षा की पीड़ा का दंश झेलती महिला इसलिए कानूनों की सहायता से लाभ पाने से पीछे हट जाती है।

वास्तविकता यह है कि केवल कानून बनाने से महिलाओं को हिंसा और उत्पीड़न से मुक्ति नहीं मिलेगी, बल्कि आवश्यक है कि इसके लिए समाज की सोच और मानसिकता में परिवर्तन हो । स्वयं महिलायें भी वर्गगत सहयोगी बनें । समाज में ऐसी किसी भी समस्या का समाधान तभी संभव है जब स्त्री और पुरुष मिलकर प्रयास करें क्योंकि भारतीय परिवारों में महिला पुरुषों की साझी भागीदारी ही आदर्श का मानदण्ड है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. 'नव भारत' समाचार पत्र, ग्वालियर– 09 अक्टूबर, 2005
2. 'नई दुनिया' समाचार पत्र, ग्वालियर–25 जनवरी, 2009
3. 'नई दुनिया' समाचार पत्र, ग्वालियर–02 जनवरी, 2006
4. 'दैनिक भास्कर' समाचार पत्र, ग्वालियर –01 नवम्बर, 2006
5. 'दैनिक भास्कर' समाचार पत्र, ग्वालियर– 14 नवम्बर, 2006
6. 'पंजाब केसरी' समाचार पत्र, नई दिल्ली – 01 नवम्बर, 2006
7. 'नई दुनिया' समाचार पत्र, ग्वालियर – 25 जनवरी, 2009
8. 'पंजाब केसरी' समाचार पत्र, नई दिल्ली– नवम्बर, 2006

9. 'नव भारत' समाचार पत्र, ग्वालियर– 20 नवम्बर, 2005
10. 'नई दुनिया' समाचार पत्र, ग्वालियर– 26 नवम्बर, 2005
11. 'नई दुनिया' समाचार पत्र, ग्वालियर– 09 नवम्बर, 2007
12. 'नव भारत' समाचार पत्र, ग्वालियर– 20 नवम्बर, 2005
13. 'नव भारत' समाचार पत्र, ग्वालियर– 09 मार्च, 2004
14. 'नव भारत' समाचार पत्र, ग्वालियर– 06 मार्च, 2004
15. 'नई दुनिया' समाचार पत्र, ग्वालियर– 31 अक्टूबर, 2006
16. 'नई दुनिया' समाचार पत्र, ग्वालियर– 30 अक्टूबर, 2006

*****